

कुण्डलिनीयोग : एक विश्लेषण

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

हमारे जानने का पहला या मूल स्रोत है—इन्द्रियाँ। ये हमारे शरीर में हैं, पृथक् नहीं हैं। हमने शरीर के कुछ ऐसे चुम्बकीय क्षेत्र बना लिये जिनके माध्यम से हम बाह्य जगत् के साथ सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। वे पाँच माध्यम हमारी पाँच इन्द्रियाँ हैं।

जो इस स्थूल शरीर से परे है, वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। वह इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। किन्तु हमारे शरीर में कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जिनके विषय में चिन्तन और अनुभव करते-करते हम अपनी बुद्धि और चिद् शक्ति के द्वारा इन्द्रियों की सीमा से परे जाकर सूक्ष्म शरीर की सीमा में प्रविष्ट हो गये। उनमें एक तत्त्व है प्राण-विद्युत्। अग्निदीपन, पाचन, शरीर का सौष्ठव और लावण्य, ओज—ये जितनी आग्नेय क्रियाएँ हैं, ये सारी सप्त धातुमय इस शरीर की क्रियाएँ नहीं हैं। फिर प्रश्न हुआ कि इन क्रियाओं का संचालक कौन है? खोज हुई। ज्ञात हुआ कि इस स्थूल शरीर के भीतर तेज का एक शरीर और है, वह है विद्युत् शरीर, तैजस शरीर। वह शरीर सूक्ष्म है। वही इस स्थूल शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन करता है। उस सूक्ष्म शरीर में से विद्युत् का प्रवाह आ रहा है और उस विद्युत्-प्रवाह से सब कुछ संचालित हो रहा है। उस सूक्ष्म शरीर को प्राण शरीर भी कहा जाता है। यह शरीर प्राण का विकिरण करता है और उसी प्राण-शक्ति से क्रियाशीलता आती है।

इन्द्रियाँ अपना कार्य करती हैं। किन्तु यदि उनमें प्राण-शक्ति का प्रवाह न हो तो वे अपना कार्य नहीं कर सकतीं। मन का अपना काम है। किन्तु प्राण-शक्ति के योग के अभाव में वह भी कुछ नहीं कर सकता। स्वर यन्त्र अपना काम करता है, पर प्राण-शक्ति के अभाव में वह निष्क्रिय हो जाता है। हमारा रेस्पेरेटरी-सिस्टम भी प्राण-शक्ति के आधार पर चलता है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया प्राण-शक्ति के बिना नहीं हो सकती।

श्वास, मन, इन्द्रियाँ, भाषा, आहार और विचार—ये सब प्राण-शक्ति के ऋणी हैं। उससे ही ये सब संचालित होते हैं, क्रियाशील होते हैं। प्राण शक्ति सूक्ष्म शरीर से निःसृत है। जहाँ से प्राणशक्ति का प्रवाह आता है वह सूक्ष्म शरीर है—तैजस शरीर।

कुण्डलिनीयोग : एक विश्लेषण : युवाचार्य महाप्रज्ञ | ३०१

यह शरीर प्राणिमात्र के साथ निरन्तर रहता है। एक प्राणी मृत्यु के उपरान्त दूसरे जन्म में जाता है। उस समय अन्तराल गति में भी तैजस शरीर उसके साथ रहता है। कर्म-शरीर सब शरीरों का मूल है। उसके बाद दूसरा स्थान तैजस शरीर का है। यह सूक्ष्म पुद्गलों से निर्मित होता है, इसलिए चर्म-चक्षु से दृश्य नहीं होता। यह स्वाभाविक भी होता है और तपस्या द्वारा उपलब्ध भी होता है। यह तप द्वारा उपलब्ध तैजस शरीर ही तेजोलेश्या है। इसे तेजोलब्धि भी कहा जाता है। स्वाभाविक तैजस शरीर सब प्राणियों में होता है। तपस्या से उपलब्ध होने वाला तैजस शरीर सबमें नहीं होता। वह तपस्या से उपलब्ध होता है। इसका तात्पर्य यह है कि तपस्या से तैजस-शरीर की क्षमता बढ़ जाती है। स्वाभाविक तैजस शरीर स्थूल शरीर से बाहर नहीं निकलता। तपोजनित तैजस शरीर शरीर के बाहर निकल सकता है। उसमें अनुग्रह और निग्रह की शक्ति होती है। उसके बाहर निकलने की प्रक्रिया का नाम तैजस समुद्धात है। जब वह किसी पर अनुग्रह करने के लिए बाहर निकलता है तब उसका वर्ण हंस की भांति सफेद होता है। वह तपस्वी के दाएँ कंधे से निकलता है। उसकी आकृति सौम्य होती है। वह लक्ष्य का हित साधन कर (रोग आदि का उपशमन कर) फिर अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

जब वह किसी का निग्रह करने के लिए बाहर निकलता है तब उसका वर्ण सिन्दूर जैसा लाल होता है। वह तपस्वी के बाएँ कंधे से निकलता है। उसकी आकृति रौद्र होती है। वह लक्ष्य का विनाश, दाह कर फिर अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

अनुग्रह करने वाली तेजोलेश्या को “शीत” और निग्रह करने वाली तेजोलेश्या को “उष्ण” कहा जाता है। शीतल तेजोलेश्या उष्ण तेजोलेश्या के प्रहार को निष्फल बना देती है।

तेजोलेश्या अनुपयोग काल में संक्षिप्त और उपयोग काल में विपुल हो जाती है। विपुल अवस्था में वह सूर्य बिम्ब के समान दुर्दर्श होती है। वह इतनी चकाचौंध पैदा करती है कि मनुष्य उसे खुली आँखों से देख नहीं सकता। तेजोलेश्या का प्रयोग करने वाला अपनी तैजस-शक्ति को बाहर निकालता है तब वह महाज्वाला के रूप में विकराल हो जाती है।

तैजस शरीर हमारे समूचे स्थूल शरीर में रहता है। फिर भी उसके दो विशेष केन्द्र हैं—मस्तिष्क और नाभि का पृष्ठ भाग। मन और शरीर के बीच सबसे बड़ा सम्बन्ध सेतु मस्तिष्क है। उससे तैजस शक्ति (प्राण शक्ति या विद्युत् शक्ति) निकलकर शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन करती है। नाभि के पृष्ठ भाग में खाए हुए आहार का प्राण के रूप में परिवर्तन होता है। अतः शारीरिक दृष्टि से मस्तिष्क और नाभि का पृष्ठ भाग—ये दोनों तेजोलेश्या के महत्वपूर्ण केन्द्र बन जाते हैं। यह तेजोलेश्या एक शक्ति है। इसे हम नहीं देख पाते। इसके सहायक परमाणु-पुद्गल सूक्ष्म दृष्टि से देखे जा सकते हैं। ध्यान करने वालों को उनका यत्किञ्चित् आभास होता रहता है।

तेजोलेश्या प्राणधारा है। हमारे शरीर में अनेक प्राणधाराएँ हैं। इन्द्रियों की अपनी प्राणधारा है। मन, शरीर और वाणी की अपनी प्राणधारा है। श्वास-प्रश्वास और जीवनी-शक्ति की भी स्वतन्त्र प्राणधाराएँ हैं। हमारे चैतन्य का तैजस शरीर के साथ योग होता है और प्राण-शक्ति बन जाती है। सभी प्राणधाराओं का मूल तैजस शरीर है। इन प्राणधाराओं के आधार पर शरीर की क्रियाओं और विद्युत् आकर्षण के सम्बन्ध का अध्ययन किया जा सकता है।

एक प्रश्न होता है कि वह तैजस शरीर किसके द्वारा संचालित है ? वह प्राणधारा को प्रवाहित अपने आप कर रहा है या किसी के द्वारा प्रेरित होकर कर रहा है ? यदि अपने आप कर रहा है तो तैजस शरीर जैसा मनुष्य में है वैसा पशु में भी है, पक्षियों में भी है और छोटे-से-छोटे प्राणी में भी है। एक भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसमें तैजस-शरीर, सूक्ष्म शरीर न हो। वनस्पति में भी तैजस शरीर है, प्राण-विद्युत् है। वनस्पति में भी ओरा होता है। आभामण्डल होता है। वह आभामण्डल इस स्थूल शरीर से निष्पन्न नहीं है। आभामण्डल (ओरा) उस सूक्ष्म शरीर—तैजस शरीर का विकिरण है। वनस्पति का अपना आभामण्डल होता है। हर प्राणी का अपना आभामण्डल होता है। मनुष्य का भी अपना आभामण्डल होता है। प्रश्न होता है यह रश्मियों का विकिरण क्यों होता है ? यदि तैजस शरीर का कार्य केवल विकिरण करना ही हो तो मनुष्य के साथ यह क्यों, कि वह इतना ज्ञानी, इतना शक्तिशाली और इतना विकसित तथा एक अन्य प्राणी इतना अविकसित क्यों ? यह सब तैजस शरीर का कार्य नहीं है। तैजस शरीर के पीछे भी एक प्रेरणा है—सूक्ष्म शरीर की। वह सूक्ष्म शरीर है कर्म शरीर। जिस प्रकार के हमारे अर्जित कर्म और संस्कार होते हैं, उनका जैसा स्पंदन होता है, उन स्पंदनों से स्पंदित होकर तैजस शरीर अपना विकिरण करता है। तैजस शरीर जिस प्रकार की प्राणधारा प्रवाहित करता है, वैसी प्रवृत्ति स्थूल शरीर में हो जाती है।

तीन शरीरों की एक शृंखला है—स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्मतर शरीर। स्थूल शरीर यह दृश्य शरीर है। सूक्ष्म शरीर है तैजस शरीर और सूक्ष्मतर है कर्म शरीर, कार्मण शरीर। कुछ लोगों ने इसका विस्तार कर सात शरीर भी माने हैं। विस्तार और भी हो सकता है। किन्तु इन तीन शरीरों की एक व्यवस्थित शृंखला है—स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतर। इन तीनों शरीरों के माध्यम से सारी प्रवृत्तियों का संचालन होता है। प्राणी की मूलभूत उपलब्धियाँ तीन हैं—चेतना (ज्ञान), शक्ति और आनन्द। चेतना का तारतम्य—अविकास और विकास, शक्ति का तारतम्य—अविकास और विकास, आनन्द का तारतम्य—अविकास और विकास। यह सारा इन शरीरों के माध्यम से होता है। कर्म शरीर में अभिव्यक्ति के जितने स्पंदन होते हैं उतने ही स्पंदन संक्रान्त होते हैं तैजस शरीर में और वे स्पंदन फिर संक्रान्त होते हैं स्थूल में। यहाँ वे पूरे प्रकट होते हैं।

तीनों शरीरों का सामंजस्य है। तीनों एकसूत्रता में जुड़े हुए हैं और अपना-अपना कार्य संपादित कर रहे हैं।

कुण्डलिनी-जागरण का प्रश्न शरीरों के साथ जुड़ा हुआ है। तीन शरीरों में जो मध्य का शरीर है, तैजस शरीर (सूक्ष्म शरीर), उसकी एक क्रिया का नाम है “तेजोलब्धि”। हठयोग तन्त्र में इसे ‘कुण्डलिनी’ कहा गया है। कहीं-कहीं इसे “चित् शक्ति” कहा जाता है। जैन-साधना पद्धति में इसे ‘तेजोलब्धि’ कहा जाता है। नाम का अन्तर है। कुण्डलिनी के अनेक नाम हैं। हठयोग में इसके पर्यायवाची नाम तीस गिनाये गये हैं। उनमें एक नाम है “महापथ”। जैन साहित्य में “महापथ” का प्रयोग मिलता है। कुण्डलिनी के अनेक नाम हैं। भिन्न-भिन्न साधना-पद्धतियों में यह भिन्न-भिन्न नाम से पहचानी गयी है। यदि इसके स्वरूप वर्णन में की गयी अतिशयोक्तियों को हटाकर इसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए तो इतना ही फलित निकलेगा कि यह हमारी विशिष्ट प्राणशक्ति है। प्राणशक्तिविशेष का विकास ही कुण्डलिनी का जागरण है। प्राणशक्ति के अतिरिक्त, तैजस शरीर के

कुण्डलिनीयोग : एक विश्लेषण : युवाचार्य महाप्रज्ञ | ३०३

विकिरणों के अतिरिक्त कुण्डलिनी का अस्तित्व वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध नहीं हो सकता। मध्यकालीन साहित्य में अतिशयोक्तियों और रूपकों का उल्लेख अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। उनकी भाषा के गहन जंगल में से मूल को खोज निकालना कठिन-सा हो गया है। आज के चिन्तक उन सब अतिशयोक्तियों और रूपकों के चक्रव्यूह को तोड़कर यथार्थ को पकड़ने का प्रयास करते हैं। उनके प्रयास में कुण्डलिनी का अस्तित्व प्रमाणित होता है, पर होता है वह सामान्य शक्ति के विस्फोट के रूप में। वह कुछ ऐसा आश्चर्यकारी तथ्य नहीं है, जिसे अमुक योगी ही प्राप्त कर सकते हैं या जिसे अमुक-अमुक योगियों ने ही प्राप्त किया है। यह सर्वसाधारण है। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसकी कुण्डलिनी जागृत न हो। वनस्पति के जीवों की भी कुण्डलिनी जागृत है। हर प्राणी की कुण्डलिनी जागृत होती है। यदि वह जागृत न हो तो वह चेतन प्राणी नहीं हो सकता। वह अचेतन हो सकता है। जैन आगम ग्रन्थों में कहा गया—चैतन्य (कुण्डलिनी) का अनन्तवां भाग सदा जागृत रहता है। यदि यह भाग भी आवृत हो जाए तो जीव अजीव बन जाए, चेतन अचेतन हो जाए। चेतन और अचेतन के बीच यही तो एक भेद-रेखा है।

प्रत्येक प्राणी की कुण्डलिनी यानी तैजस शक्ति जागृत रहती है। अन्तर होता है मात्रा का। कोई व्यक्ति विशिष्ट साधना के द्वारा अपनी इस तैजस शक्ति को विकसित कर लेता है और किसी व्यक्ति को अनायास ही गुरु का आशीर्वाद मिल जाता है तो साधना में तीव्रता आती है और कुण्डलिनी का अधिक विकास हो जाता है। यह अनुभव आगामी यात्रा में सहयोगी बन सकता है। बनता है यह जरूरी नहीं है। गुरु की कृपा ही क्यों, मैं मानता हूँ कि जिस व्यक्ति का तैजस शरीर जागृत है, उस व्यक्ति के सान्निध्य में जाने से भी दूसरे व्यक्ति की कुण्डलिनी पूर्ण जागृत हो जाती है। गुरु कृपा का इतना-सा लाभ होता है कि एक बार जब अनुभव हो जाता है, फिर चाहे वह अनुभव क्षणिक ही क्यों न हो, तो वह आगे के अनुभव को जगाने के लिए प्रेरक बन जाता है। इतना लाभ अवश्य होता है। यह अपने आप में बहुत मूल्यवान् है। यही शक्तिपात है। पर जैसे-जैसे शिष्य, गुरु या उस व्यक्ति से दूर जाएगा, वह शक्ति धीरे-धीरे कम होती जाएगी। आखिर ली हुई शक्ति कितने समय तक टिक सकती है। अपनी शक्ति को जगाना पड़ता है। वही स्थायी बनी रह सकती है। अपनी शक्ति को जगा लेने पर भी अवरोध आ सकते हैं। किसी व्यक्ति ने उस जागृत शक्ति से अनुपयुक्त काम कर डाला, तो वह शक्ति चली जाती है, क्षीण हो जाती है।

प्रेक्षाध्यान से भी कुण्डलिनी जाग सकती है। उसको जगाने के अनेक मार्ग हैं, अनेक उपाय हैं। संगीत के माध्यम से भी उसे जगाया जा सकता है। संगीत एक सशक्त माध्यम है कुण्डलिनी के जागरण का। व्यायाम और तपस्या से भी वह जाग जाती है। भक्ति, प्राणायाम, व्यायाम, उपवास, संगीत, ध्यान आदि अनेक साधन हैं, जिनके माध्यम से कुण्डलिनी जागती है। ऐसा भी होता है कि पूर्व संस्कारों की प्रबलता से भी कुण्डलिनी जागृत हो जाती है और यह आकस्मिक होता है। व्यक्ति कुछ भी प्रयत्न या साधना नहीं कर रहा है, पर एक दिन उसे लगता है कि उसकी प्राणशक्ति जाग गयी। इसलिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता है कि अमुक के द्वारा ही कुण्डलिनी जागती है और अमुक के द्वारा नहीं जागती। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति गिरा, मस्तिष्क पर गहरा आघात लगा और कुण्डलिनी जाग गयी। उसकी अतीन्द्रिय चेतना जाग गयी। कुण्डलिनी के जागने के अनेक कारण हैं। औषधियों के द्वारा भी कुण्डलिनी जागृत होती है। अमुक-अमुक वनस्पतियों के प्रयोग से कुण्डलिनी के जागरण में सहयोग मिलता है। तिब्बत में तीसरे नेत्र के उद्घाटन में वनस्पतियों का प्रयोग भी किया

जाता था। पहले शल्य क्रिया करते, फिर वनौषधियों का प्रयोग करते थे। औषधियों का महत्व सभी परम्पराओं में मान्य रहा है। प्रसिद्ध सूक्त है—अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः—मणियों, मन्त्रों और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। मन्त्रों के द्वारा भी कुण्डलिनी को जगाया जा सकता है तथा विविध मणियों, रत्नों के विकिरणों के द्वारा और औषधियों के द्वारा भी उसे जागृत किया जा सकता है।

तेजोलेश्या के विकास का कोई एक ही स्रोत नहीं है। उसका विकास अनेक स्रोतों से किया जा सकता है। संयम, ध्यान, वैराग्य, भक्ति, उपासना, तपस्या आदि-आदि उसके विकास के स्रोत हैं। इन विकास-स्रोतों की पूरी जानकारी लिखित रूप में कहीं भी उपलब्ध नहीं होती। यह जानकारी मौखिक रूप में आचार्य शिष्य को स्वयं देते थे।

गोशालक ने महावीर ने पूछा—“भंते ! तेजोलेश्या का विकास कैसे हो सकता है ?” महावीर ने इसके उत्तर में उसे तेजोलेश्या के एक विकास स्रोत का ज्ञान कराया। उन्होंने कहा—“जो साधक निरन्तर दो-दो उपवास करता है, पारणे के दिन मुट्ठी भर उड़द या मूंग खाता है और एक चुल्हू पानी पीता है, भुजाओं को ऊँची कर सूर्य की आतापना लेता है, वह छह महीनों के भीतर ही तेजोलेश्या को विकसित कर लेता है।”

तेजोलेश्या के तीन विकास-स्रोत हैं—

१. आतापना—सूर्य के ताप को सहना।
२. क्षांति-क्षमा—समर्थ होते हुए भी क्रोध-निग्रहपूर्वक अप्रिय व्यवहार को सहन करना।
३. जल-रहित तपस्या करना।

इनमें केवल “क्षांति क्षमा” नया है। शेष दो उसी विधि के अंग हैं जो विधि महावीर ने गोशालक को सिखाई थी।

कुण्डलिनी को जगाने के अनेक हेतु हैं। उनमें प्रेक्षाध्यान भी एक सशक्त माध्यम बनता है कुण्डलिनी को जगाने में, तैजस शक्ति को जगाने में। दीर्घ श्वास प्रेक्षा की प्रक्रिया कुण्डलिनी के जागरण की प्रक्रिया है। यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन एक घण्टा दीर्घश्वास प्रेक्षा का अभ्यास करता है तो कुण्डलिनी जागरण का यह शक्तिशाली माध्यम बनता है। अन्तर्प्राप्ति भी उसके जागरण का रास्ता है। सुषुम्ना के मार्ग से चित्त को शक्ति केन्द्र तक और ज्ञान केन्द्र से शक्ति केन्द्र तक ले जाना-लाना भी कुण्डलिनी को जागृत करता है।

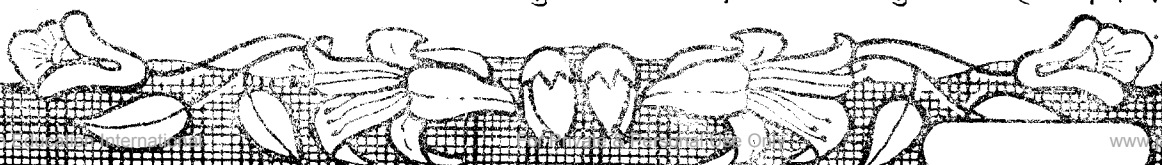
तीसरा माध्यम है—शरीर प्रेक्षा। शरीर-दर्शन का अभ्यास जब पुष्ट होता है तब तैजस शक्ति का जागरण होता है।

चौथा माध्यम है—चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा। चैतन्य केन्द्रों को देखने का अर्थ है कुण्डलिनी के सारे मार्गों को साफ कर देना।

चैतन्य केन्द्रों के सारे अवरोध समाप्त हो जाने पर कुण्डलिनी जागरण सहज हो जाता है।

पाँचवां माध्यम है—लेश्याध्यान। यह सबसे शक्तिशाली साधन है कुण्डलिनी को जगाने का। रंग हमारे भावतन्त्र को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। रंगों का सम्बन्ध चित्त के साथ गहरा होता है। जब उस प्रक्रिया से साधक गुजरता है तब शक्ति का सहज जागरण होता है।

कुण्डलिनीयोग : एक विश्लेषण : युवाचार्य महाप्रज्ञ | ३०५



प्रेक्षाध्यान की पूरी प्रक्रिया कुण्डलिनी के जागरण की प्रक्रिया है।

कुण्डलिनी-जागरण के लाभ भी हैं और अलाभ भी हैं। कुछ लोगों ने बिना किसी संरक्षण के स्वतः कुण्डलिनी जागरण की दिशा में पादन्यास किया। पूरी युक्ति हस्तगत न होने के कारण उनका मस्तिष्क विकृष्ट हो गया। इसके अतिरिक्त और अनेक खतरे सामने आते हैं। प्रश्न होता है— क्या इन खतरों से बचा जा सकता है? बचने के उपाय क्या हैं?

शक्ति हो और खतरा न हो, यह कल्पना नहीं की जा सकती। जिसमें तारने की शक्ति होती है, उसमें मारने की भी शक्ति होती है। जिसमें मारने की शक्ति होती है, उसमें तारने की भी शक्ति होती है। शक्ति है तो तारना और मारना दोनों साथ-साथ चलते हैं। कुण्डलिनी के साथ खतरे भी जुड़े हुए हैं। विद्युत लाभदायी है तो खतरनाक भी है। विद्युत के खतरों से सभी परिचित हैं। बिजली के तार खुले पड़े हैं। कोई छुएगा तो पहले झटका लगेगा, छूने वाला गिर जाएगा या गहरा शॉट लगा तो मर भी जायेगा, खतरा निश्चित है।

सोचें, प्राण-शक्ति का प्रवाह ऊपर जा रहा है। उसकी ऊर्ध्व यात्रा हो रही है। प्राण का प्रवाह सीधा जाना चाहिए सुषुम्ना से, पर किसी कारणवश वह चला गया पिंगला में तो गर्मी इतनी बढ़ जाएगी कि साधक सहन नहीं कर पाएगा। वह बीमार बन जाएगा और जीवन भर उस बीमारी को उसे भोगना पड़ेगा। उसकी चिकित्सा असम्भव हो जाएगी। प्राणशक्ति एक साथ इतनी जाग गयी कि साधक में उसे सहन करने की क्षमता नहीं है तो वह पागल हो जाएगा। ऐसा होता है। एक साथ होने वाला शक्ति का जागरण अनिष्टकारी होता है। इसीलिए कहा जाता है कि तैजस शक्ति का विकास करना चाहे, कुण्डलिनी शक्ति का विकास करना चाहे तो उसे धीरे-धीरे विकसित करना चाहिए। इस विकास की प्रक्रिया के अनेक अंग हैं। हठयोग में “कायसिद्धि” को साधना का प्रारम्भिक बिन्दु माना है। यह बहुत महत्वपूर्ण प्रतिपादन है। जैन परम्परा में तपस्या और आहार शुद्धि को साधना का महत्वपूर्ण अंग माना है। यह इसीलिए कि तपस्या और आहारशुद्धि से कायसिद्धि होती है, शरीर सध जाता है। जब कायसिद्धि हो जाती है तब शक्ति जागरण के सारे खतरे समाप्त हो जाते हैं। शरीर को दृढ़ और मजबूत बनाये बिना शक्तियों को अवतरित करने का प्रयत्न करना बहुत हानिकारक है। कमजोर शरीर में यदि शक्ति का स्रोत फूटता है तो शरीर चकनाचूर हो जाता है, नष्ट हो जाता है। वह भीतर-ही-भीतर भष्मीसात् हो जाता है। नाड़ी-संस्थान को शक्तिशाली बनाये बिना शक्ति-जागरण का प्रयत्न करना नादानाई है, ब्रज सूखता है। नाड़ी-शोधन कुण्डलिनी जागरण का महत्वपूर्ण घटक है। नाड़ी शोधन की निश्चित प्रक्रिया है। नाड़ी-शोधन का अर्थ शरीर की नाड़ियों का शोधन नहीं है। उसका अर्थ है— प्राण प्रवाह की जो नालिकाएँ हैं, जो मार्ग हैं, उनका शोधन करना। बीच में आने वाले अवरोधों को साफ करना। नाड़ी शोधन के बिना शक्ति का जागरण बहुत खतरनाक होता है। शक्ति जाग गयी, पर आगे का रास्ता अवरुद्ध है, साफ नहीं है तो वह शक्ति अपना रास्ता बनाने के लिए विस्फोट करेगी, रास्ता मोड़ेगी। उस विस्फोट से भयंकर स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

इन सभी खतरों से बचने के लिए दो उपाय हैं—अनुभवी व्यक्ति का मार्गदर्शन और धैर्य। जो भी शक्ति-जागरण के महत्वपूर्ण उपक्रम हैं, उनका अभ्यास स्वतः नहीं करना चाहिए। किसी अनुभवी व्यक्ति के परामर्श और मार्गदर्शन में ही उस साधना को प्रारम्भ करना चाहिए। यह इसलिए कि वह अनुभवी व्यक्ति यदा-कदा होने वाले आकस्मिक खतरों से उसे बचाकर उसका मार्ग प्रशस्त करता है।

साधना की सफलता का आदि-बिन्दु भी धैर्य है और अन्तिम बिन्दु भी धैर्य है। धैर्य के अभाव में कुछ भी सम्भव नहीं होता। आज का आदमी अधैर्य के दौर से गुजर रहा है। वह इतना अधीर है कि किसी भी स्थिति में वह धैर्य नहीं रख पाता। बीमार है। डॉक्टर दवाई देता है। एक घण्टे में यदि आराम नहीं होता है तो डॉक्टर बदल देता है। दिन में पाँच डॉक्टर बदल देता है। बड़ी विकट स्थिति है। साधना में अधैर्य हानिप्रद होता है। वह किसी साधना को सफल नहीं होने देता।

कुण्डलिनी जागरण की इस प्रक्रिया में धैर्य की बात बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें साधना-काल लम्बा होता है। उस दीर्घकाल को धैर्य से ही पूरा किया जा सकता है। धीरे-धीरे साधना परिपक्व होती है और जब तैजस जागरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, तब सारे खतरे टल जाते हैं।

तेजोलेश्या के निग्रह-अनुग्रह स्वरूप के विकास के स्रोतों की यह संक्षिप्त जानकारी है। उसका जो आनन्दात्मक स्वरूप है उसके लिए विकास-स्रोत भावात्मक तेजोलेश्या की अवस्था में होने वाली चित्त-वृत्तियाँ हैं। चित्त-वृत्तियों की निर्मलता के बिना तेजोलेश्या के विकास का प्रयत्न खतरों को निमंत्रित करने का प्रयत्न है। वे खतरे शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक तीनों प्रकार के हो सकते हैं।

जो साधना के द्वारा तेजोलेश्या को प्राप्त कर लेता है वह सहज आनन्द की अनुभूति में चला जाता है। इस अवस्था में विषय-वासना और आकांक्षा की सहज निवृत्ति हो जाती है। इसीलिए इस अवस्था को “सुखासिका” (सुख में रहना) कहा जाता है। विशिष्ट ध्यान योग की साधना करने वाला एक वर्ष में इतनी तेजोलेश्या को उपलब्ध होता है कि उससे उत्कृष्टतम भौतिक सुखों की अनुभूति अति-क्रान्त हो जाती है। उस साधक को इतना सहज सुख प्राप्त होता है जो किसी भी भौतिक पदार्थ से प्राप्त नहीं हो सकता।

योग की उपयोगिता जैसे-जैसे बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे उस विषय में जिज्ञासाएँ भी बढ़ती जा रही हैं। योग की चर्चा में कुण्डलिनी का सर्वोपरि महत्व है। बहुत लोग पूछते हैं कि जैन योग में कुण्डलिनी सम्मत है या नहीं? यदि वह एक वास्तविकता है तो फिर कोई भी योग-परम्परा उसे अस्वीकृत कैसे कर सकती है? वह कोई सैद्धान्तिक मान्यता नहीं है, किन्तु एक यथार्थ शक्ति है। उसे अस्वीकृत करने का प्रश्न नहीं हो सकता।

जैन परम्परा के प्राचीन साहित्य में कुण्डलिनी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। उत्तरवर्ती साहित्य में इसका प्रयोग मिलता है। वह तन्त्रशास्त्र और हठयोग का प्रभाव है। आगम और उसके व्याख्या साहित्य में कुण्डलिनी का नाम तेजोलेश्या है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि हठयोग में कुण्डलिनी का जो वर्णन है उसकी तुलना तेजोलेश्या से की जा सकती है। अग्नि ज्वाला के समान लाल वर्ण वाले पुद्गलों के योग से होने वाली चैतन्य की परिणति का नाम तेजोलेश्या है। यह तप की विभूति से होने वाली तेजस्विता है।

